

नारी जागरण की अभिव्यक्ति में महात्मा ज्योतिबा फुले का योगदान

विजयलक्ष्मी

शोधार्थी, इतिहास विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक

अंजना यादव

एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक

प्रस्तावना:

ज्योतिबा फुले (1827-1890) ने अपने परोपकारी कार्यों और दार्शनिक मान्यताओं से उन्नीसवीं सदी के भारत में, विशेष रूप से महाराष्ट्र में, एक गहन सामाजिक क्रांति को बढ़ावा दिया। ज्योतिबा फुले (1827-1890) ने मानवाधिकारों की वकालत करके उन्नीसवीं सदी के भारत, अर्थात् महाराष्ट्र में सामाजिक सुधार का नेतृत्व किया। उन्नीसवीं सदी में सामाजिक आलोचना और क्रांति की विशेषता थी, जिसमें राष्ट्रवाद, जाति और लिंग पर विशेष ध्यान दिया गया था। सुधारकों ने महिलाओं से संबंधित कई चिंताओं की ओर अपना ध्यान आकर्षित किया, जैसे कन्या शिशुओं को मारने की प्रथा, लड़कियों की कम उम्र में शादी, महिलाओं की शिक्षा तक पहुंच पर सीमाएं, सती प्रथा (विधवा आत्मदाह), विधवाओं के सिर मुंडवाने की प्रथा, और अन्य कठिनाइयों के बीच, विधवाओं के पुनर्विवाह पर प्रतिबंध। समवर्ती रूप से, उन्होंने परिवर्तन की वकालत करते हुए अपना ध्यान परिवार और विवाह की संरचनाओं को संशोधित करने, महिलाओं के अधिकारों और सामाजिक स्थिति पर विशेष महत्व देने की ओर निर्देशित किया। ज्योतिबा ने लिंग और जाति की चिंताओं का समाधान किया। उन्होंने अन्यायपूर्ण जाति व्यवस्था और मानवाधिकारों के हनन के खिलाफ विद्रोह किया, जिसने हजारों वर्षों से अनगिनत व्यक्तियों को गुलाम बना रखा था। जाति व्यवस्था के प्रति उनकी अवज्ञा समानता और दयालुता के सिद्धांतों में निहित सामाजिक और धार्मिक परिवर्तनों के साथ हुई। वह महाराष्ट्र में हाशिये पर पड़े सामाजिक समूहों का प्रतिनिधित्व करने वाले अग्रणी व्यक्ति के रूप में प्रमुखता से उभरे और पूरे देश में भारत के हाशिए पर रहने वाले वर्गों के नेता के रूप में व्यापक रूप से पहचाने गए। उन्हें अमेरिकी दार्शनिक थॉमस पेन के राइट्स ऑफ मैन में प्रस्तुत विचारों से प्रेरणा मिली। यह लेख ज्योतिबा पर उन अग्रदूतों में से एक के रूप में केंद्रित है जिन्होंने भारत में एक समाज सुधारक के रूप में बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की।

मुख्य शब्द: समाज सुधारक, दार्शनिक मान्यताएँ, जाति, लिंग, राष्ट्रवाद, समानता, हाशिए पर रहने वाले वर्ग, आदि

ज्योतिबा फुले का जीवन

ज्योतिबा फुले के पिता के शासनकाल में पेशवाओं के अधिकार और वैभव में काफी गिरावट आई थी। पेशवाओं के अंतिम दिनों में शासकों ने निष्पक्ष शासन की प्रथा को त्याग दिया। ब्राह्मण इष्ट जाति थी। जब उन्हें पदोन्नत किया गया तो योग्यता की अनदेखी की गई। ब्राह्मणों को कई उल्लंघनों के

लिए हल्के प्रतिबंधों के अधीन किया गया था, जो कानून द्वारा अनिवार्य से कम गंभीर थे। वे संभावित रूप से अपने संपत्ति कर को 50% या उससे भी अधिक कम कर सकते हैं। बाजीराव द्वितीय के शासन में, ब्राह्मणों को उदारतापूर्वक परोपकारी कार्यों और असाधारण भोजों से सम्मानित किया जाता था। इसके विपरीत, किसानों को साहूकारों पर निर्भरता के परिणामस्वरूप अत्यधिक नाखुशी का सामना करना पड़ा, जिनमें से अधिकांश लोग ब्राह्मण जाति के थे।

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान, ब्राह्मणों का समाज में प्रभुत्व था क्योंकि वे शिक्षा प्राप्त करने की अनुमति वाले विशिष्ट वर्ग थे। इसके विपरीत, अन्य जातियों के व्यक्ति शैक्षिक अवसरों और समाज में समान अधिकारों से वंचित थे। अस्पृश्यता ने शूद्रों और अतिशूद्रों के लिए एक महत्वपूर्ण खतरा उत्पन्न कर दिया, जिससे वे प्रमुख सामाजिक समूह से बाहर हो गए। सबसे व्यापक मुद्दा सामाजिक पूर्वाग्रह और निचली जातियों और महिलाओं का शोषण था।

धनंजय कीर का दावा है कि 19वीं सदी के महाराष्ट्र में पेशवा शासन के तहत, ब्राह्मण खुद को प्रमुख सामाजिक वर्ग के रूप में समझने लगे, कुछ विशेषाधिकारों और छूटों का आनंद ले रहे थे जो शिवाजी के प्रशासन में अनुपस्थित थे। पिछले पेशवा के शासनकाल के दौरान, ब्राह्मणों के स्वामित्व वाली भूमि का मूल्यांकन अन्य सामाजिक वर्गों के स्वामित्व वाली भूमि की तुलना में 50% या उससे कम था। कानून की कठोरतम सजा ब्राह्मण अपराधियों पर लागू नहीं होती थी। विशिष्ट अधिकार, एकाधिकार और परोपकारी दान विशेष रूप से ब्राह्मणों के लिए निर्दिष्ट और दिए गए थे। अकाल के दौरान, बाजीराव द्वितीय की सरकार ने विशेष रूप से ब्राह्मणों की सहायता की।

ज्योतिबा फुले की वंशावली उनके दूर के पूर्वज वन शेतिबा से मिलती है। खानावली पुणे जिले के पुरंदर उपखंड में उनके पूर्वजों के वंशानुगत गांव के रूप में कार्य करता था। शेतिबा के पनोजी, गोविंदा और कृष्णा नाम के तीन बेटे थे। मूल रूप से गोरहे परिवार के रूप में जाने जाने वाले, फूलों की दुकान स्थापित करने के बाद उन्होंने अपना नाम बदलकर ज्योतिबा फुले रख लिया। पेशवा शासन के अंतिम वर्षों के दौरान, ज्योतिबा फुले के पूर्वजों ने पेशवाओं को फूलों से संबंधित विभिन्न उत्पाद, जैसे फूलों के गद्दे, तकिए और परिधान प्रदान किए। पत्र में उन्हें उपहार के रूप में एक बगीचा और 35 एकड़ की संपत्ति का एक पार्सल दिया गया। जोतिराव के पूर्वज अतीत में सब्जी विक्रेता के रूप में कार्यरत थे।

11 अप्रैल 1827 को महाराष्ट्र में जन्मे ज्योतिबा गोविंदराव फुले माली जाति से थे। फूलों के व्यापार में संलग्न होने के कारण उनके परिवार ने 'फुले' उपनाम अपनाया। सामाजिक मानदंडों के बावजूद, फुले ने ईसाई मिशनरियों से प्रेरित होकर शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने 1847 में अंग्रेजी की पढ़ाई पूरी की और 13 साल की उम्र में सावित्रीबाई से शादी कर ली। जाति-आधारित भेदभाव को देखते हुए, उन्होंने शिक्षा के माध्यम से निचली जातियों के उत्थान का संकल्प लिया। थॉमस पेन से प्रभावित होकर, उन्होंने ब्राह्मण आधिपत्य, सामाजिक मुद्दों और हिंदू धर्म की आलोचना की। फुले ने हिंदू धर्म को सार्वभौमिक धर्म के रूप में खारिज करते हुए स्वतंत्रता और समानता पर आधारित समाज का लक्ष्य रखा।

उनके प्रत्येक कार्य में लेखक की साहित्यिक शैली ने एक मजबूत और साहसिक गुणवत्ता का प्रदर्शन किया। उनकी साहित्यिक रचनाएँ महाराष्ट्र की सामाजिक और चर्च संबंधी संरचना की प्रतिक्रिया थीं। उनके अनुसार, ऊंची जातियां सामाजिक पदानुक्रम पर नियंत्रण रखती थीं और उन्हें विशेष विशेषाधिकार प्राप्त थे। किसी के सामाजिक वर्ग और लिंग के आधार पर मतभेद मौजूद थे। सामाजिक ढांचे के भीतर, दलित मानव अधिकारों के किसी भी अंश से वंचित थे, केवल प्रतिकूल परिस्थितियों, घटिया व्यवहार, अन्याय और शोषण का अनुभव कर रहे थे। धर्म पुराण और वेद इस विशेष सामाजिक संरचना का समर्थन करते हैं।

इस प्रकार, फुले ने इसके प्रति दृढ़ प्रतिरोध प्रदर्शित किया। उनका उद्देश्य एक नवीन सामाजिक संस्कृति विकसित करना था जो समानता, निष्पक्षता और मानवता के सिद्धांतों पर आधारित हो।

आधुनिक भारतीय पुनर्जागरण में एक अग्रणी मानवाधिकार योद्धा

फुले ने अस्पृश्यता सहित जाति व्यवस्था के पूर्ण उन्मूलन के लिए सम्मोहक तर्क दिए। उन्होंने दमनकारी जाति व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह की शुरुआत की, जिसने लाखों लोगों को पीढ़ियों तक उत्पीड़न का शिकार बनाया था। उस दौरान दलित समुदाय के पास राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक अधिकारों का अभाव था। उन्होंने ब्राह्मण व्यवस्था की दोहरी नैतिकता की आलोचना की। उन्होंने यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता पर जोर दिया कि सभी व्यक्तियों को समान अवसर प्रदान किए जाएं। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि प्रत्येक व्यक्ति जन्म से ही स्वाभाविक रूप से स्वतंत्रता और समानता से संपन्न है। प्रत्येक व्यक्ति के जन्मजात अधिकार होते हैं। वह हाशिए पर रहने वाले व्यक्तियों के मानवाधिकारों की सुरक्षा के प्रबल समर्थक थे। अपनी पत्नी सावित्रीबाई फुले के प्रति उनके समर्पण ने उन्हें उनकी लड़ाई में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए प्रेरित किया। सावित्रीबाई ने महात्मा फुले की कठिनाइयों में सक्रिय भूमिका निभाई। ज्योतिबा के निधन के बाद उन्होंने आंदोलन का नेतृत्व करने की भूमिका निभाई।

ज्योतिबा फुले का आंदोलन सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों को संबोधित करने के व्यापक भारतीय प्रयासों के औपनिवेशिक संदर्भ में सामने आया। महाराष्ट्र में, ब्रिटिश अधिकारियों के दबाव का जवाब देते हुए, ब्राह्मण और गैर-ब्राह्मण दोनों समूह एक साथ और पारस्परिक रूप से प्रभावित करने वाली गतिविधियों में लगे हुए थे। फुले ने 1873 में बंबई में प्रभावशाली प्रार्थना समाज और उत्तर भारत में आर्य समाज के साथ मिलकर सत्यशोधक समाज की स्थापना की। 20वीं सदी में गति पकड़ रहे गैर-ब्राह्मण आंदोलन ने कुलीन राजनीतिक संगठनों की समयरेखा को प्रतिबिंबित किया।

सत्यशोधक समाज की स्थापना ने महाराष्ट्र के पहले राजनीतिक संगठन, पूना सार्वजनिक सभा का बारीकी से अनुसरण किया, और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से लगभग बारह साल पहले। सत्यशोधक पत्रिका, दीन बंधु, 1875 में शुरू हुई, और प्रभाव की पारस्परिक प्रक्रिया को प्रदर्शित करते हुए, ब्राह्मण राष्ट्रवादी पत्रिकाओं केसरी और महरत्ता से आठ साल पहले शुरू हुई। यह आदान-प्रदान "भारतीय पुनर्जागरण" के साथ शुरू हुआ, जहां प्रारंभिक भारतीय दार्शनिक पश्चिमी प्रभाव से जुड़ा रहे थे, उनका लक्ष्य आत्म मूल्यांकन, वैज्ञानिक सिद्धांतों के एकीकरण और भारत की पुनर्कल्पना के माध्यम से

समाज को बदलना था। ज्योतिबा फुले के विचार औपनिवेशिक युग के दौरान इस पहली पीढ़ी के पुनर्जागरण सोच की प्रारंभिक अभिव्यक्ति का प्रतीक थे।

महिलाएं और शूद्र ब्राह्मण षडयंत्र के परिणामस्वरूप अपने मानवाधिकारों के हनन से बेखबर हैं। इसके अलावा, फुले ने धार्मिक ग्रंथों में पुरुष वर्चस्व पर प्रकाश डाला। हालाँकि, निर्मिक में अपनी आस्था के बावजूद, वह जटिल अनुष्ठानों और मूर्तियों और मंदिरों के प्रति निर्विवाद भक्ति की वकालत नहीं करते हैं। उन्होंने निरर्थक समारोहों और देवत्व और मानवता के बीच किसी भी मध्यस्थ का कड़ा विरोध किया। वह भगवान को दिया गया कोई भी प्रसाद स्वीकार करने से इनकार करता है। वह लैंगिक समानता की वकालत करते हैं, पदानुक्रमित प्रभुत्व को अस्वीकार करते हैं, और स्पष्टवादिता और कर्तव्यनिष्ठा को प्रोत्साहित करते हैं। मानवता की प्रगति के लिए शिक्षा महत्वपूर्ण है। शिक्षा के अभाव में, निचली जातियाँ लगातार उत्पीड़न का अनुभव करेंगी और नुकसान का सामना करेंगी। सभ्यता के हास के लिए शिक्षा का अभाव उत्तरदायी है।

फुले का उद्देश्य साक्षरता को बढ़ावा देने से भी आगे तक फैला हुआ था। उनका उद्देश्य विद्वान व्यक्तियों को तैयार करना और शिक्षा के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन की वकालत करना था। महात्मा फुले ने महिला शिक्षा, निचली जातियों के लिए शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, पाठ्यक्रम सुधार, कृषि शिक्षा, तकनीकी शिक्षा और शिक्षक प्रशिक्षण जैसे विभिन्न विषयों पर अपने विचार व्यक्त किए। अफसोस की बात है कि उनके शैक्षिक लक्ष्यों को भारत में अस्वीकृति का सामना करना पड़ा। महात्मा और सावित्रीबाई फुले ने हमेशा सामाजिक रूप से वंचित लोगों के जीवन को बेहतर बनाने के लिए शिक्षा को सबसे प्रभावी तरीका माना। सामाजिक जागरूकता पैदा करने और सामाजिक परिवर्तन लाने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है।

महिलाएं और शूद्र ब्राह्मण समुदाय द्वारा व्यवस्थित रूप से अपने मानवाधिकारों के हनन से बेखबर हैं। इसके अलावा, फुले ने धार्मिक कार्यों में प्रचलित पुरुष वर्चस्व को रेखांकित किया। हालाँकि, निर्मिक में अपने विश्वास के बावजूद, वह जटिल अनुष्ठानों और देवताओं के चित्रण और पूजा स्थलों के प्रति निर्विवाद भक्ति की वकालत नहीं करते हैं। उन्होंने निरर्थक समारोहों और ईश्वर तथा मानवता के बीच किसी भी मध्यस्थ का कड़ा विरोध किया। वह भगवान को दिया गया कोई भी प्रसाद लेने से इंकार कर देता है। वह लैंगिक समानता की वकालत करते हैं, पदानुक्रमित प्रभुत्व को अस्वीकार करते हैं, और स्पष्टवादिता और कर्तव्यनिष्ठा को प्रोत्साहित करते हैं। मृत्यु के बाद, पाप अनुपस्थित है, वैकल्पिक क्षेत्र का अभाव है, और पुनर्जन्म के चक्र का अभाव है। मनुष्य जीवन में आगे बढ़ने के लिए अपनी संज्ञानात्मक क्षमता का उपयोग करने के लिए बाध्य था।

महात्मा फुले के 'सार्वजनिक सत्य धर्म' ने इस राष्ट्र में लोकतांत्रिक संघर्ष के मूल सिद्धांतों की घोषणा के रूप में कार्य किया, उनकी मान्यताओं और चिंताओं को व्यक्त किया। अत्यधिक पारंपरिक परिवेश के बीच, सत्य, समानता और मानवता के ऊंचे सिद्धांतों पर आधारित एक समुदाय की स्थापना का कार्य कठिन साबित हुआ। ऐसी स्थिति को देखते हुए, प्रभुत्वशाली वर्गों और उनकी विचारधारा के सामने वंचित समूहों को शिक्षित करने के लिए अपना जीवन समर्पित करना एक

अत्यधिक दुर्जेय आकांक्षा थी। फिर भी, उन दोनों ने इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए लगातार प्रयास किया और भविष्य के प्रयासों का मार्ग प्रशस्त किया।

अपने काम, सार्वजनिक सत्य-धर्म पुस्तक में, महात्मा फुले ने जोर देकर कहा कि सभी धार्मिक ग्रंथ पुरुषों द्वारा लिखे गए हैं और संपूर्ण सत्य को शामिल नहीं करते हैं। कुछ निरंतर व्यक्तियों ने इन कार्यों को विशिष्ट अवसरों और समसामयिक आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने के लिए संशोधित किया। नतीजतन, धर्म सभी व्यक्तियों को समान लाभ प्रदान नहीं करते हैं और इसके बजाय नफरत से प्रेरित संप्रदायों और विभाजनों के उद्भव को बढ़ावा देते हैं। लेखक का दावा है कि धर्म, लिंग या जाति के विचारों से परे, मानवता अस्तित्व का केंद्रीय विषय है। इसके अलावा, लेखक पूरे समाज में सभी व्यक्तियों की समानता में विश्वास करता है।

फुले के सिद्धांत मानवतावाद में निहित हैं, और उन्होंने जाति व्यवस्था के पूर्ण उन्मूलन के लिए सम्मोहक तर्क प्रस्तुत किए। उन्होंने उस असमान जाति व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह किया जिसने सहस्राब्दियों तक लाखों व्यक्तियों पर शासन किया था और उनके साथ दुर्व्यवहार किया था। उस दौरान दलित समुदाय को राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक विशेषाधिकारों का अभाव था। उन्होंने ब्राह्मण व्यवस्था की दोहरी नैतिकता की आलोचना की। उन्होंने विश्वास व्यक्त किया कि प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर मिलना चाहिए। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि प्रत्येक व्यक्ति जन्म से ही स्वाभाविक रूप से स्वतंत्रता और समानता से संपन्न है। प्रत्येक व्यक्ति के जन्मजात अधिकार होते हैं। वह उन लोगों के मानवाधिकारों की सुरक्षा के प्रबल समर्थक थे जो हाशिए पर थे और जिनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता था। मानवाधिकारों पर सिरसवाल के सिद्धांतों को इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है: "सभी व्यक्तियों को, उनकी भौगोलिक उत्पत्ति की परवाह किए बिना, एक एकीकृत वैश्विक परिवार के रूप में एक साथ आना चाहिए, ईमानदारी को अपनाना चाहिए और अपने स्थानीय समुदाय, क्षेत्र, राष्ट्र, महाद्वीप के आधार पर किसी भी पूर्वाग्रह या भेदभाव के बिना होना चाहिए।" या धार्मिक आस्थाएँ।" मनुष्य को सृष्टिकर्ता द्वारा स्वतंत्रता और दूसरों के साथ समान अधिकारों का आनंद लेने की क्षमता दी गई थी। सभी व्यक्तियों को सृष्टिकर्ता द्वारा अपने विचारों और दृष्टिकोणों को खुलकर व्यक्त करने का विशेषाधिकार दिया गया है, जब तक कि वे दूसरों को कोई नुकसान न पहुँचाएँ। इसे अनुकरणीय आचरण माना जाता है।

मानव अधिकारों और धर्म पर ज्योतिबा फुले के विचार एक दिव्य प्राणी द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों में विश्वास पर आधारित थे। उन्होंने सभी व्यक्तियों के लिए धार्मिक और राजनीतिक स्वतंत्रता पर जोर देते हुए नैतिक व्यवहार की वकालत की। फुले ने मूर्ति पूजा, अनुष्ठान, अत्यधिक आत्म-अनुशासन, पूर्वनिर्धारित भाग्य और पुनर्जन्म की अवधारणा को खारिज कर दिया। उन्होंने ब्राह्मणों द्वारा ऐतिहासिक शोषण को उजागर करते हुए हिंदू धर्म की आलोचना की और विकल्प के रूप में सार्वजनिक सत्य धर्म का प्रस्ताव रखा।

हिंदू धर्म पर फुले के हमले ने जाति और वर्ण व्यवस्था को निशाना बनाया, यह दावा करते हुए कि उन्हें शोषण के लिए ब्राह्मणों द्वारा हेरफेर किया गया था। हिंदू धर्म को अस्वीकार करने के बावजूद, उन्होंने धर्म में विश्वास बनाए रखा और समतावाद पर आधारित प्रणाली की दिशा में काम किया।

थॉमस पेन से प्रभावित होकर, फुले का धर्म भौतिक दुनिया के मामलों पर केंद्रित था, एक आदर्श परिवार को बढ़ावा देता था जहां सदस्य स्वतंत्र रूप से अपने चुने हुए धर्मों का पालन कर सकते थे। वह विभिन्न धार्मिक शिक्षाओं के सह-अस्तित्व में विश्वास करते थे, उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि कोई भी धर्म सत्य तक विशेष पहुंच नहीं रखता है। फुले ने बर्बर हिंदू प्रथाओं का समर्थन करने की वकालत की और मंदिरों को सरकार की वित्तीय सहायता को चुनौती दी, सांप्रदायिकता और धार्मिक मामलों के प्रति अनुचित तटस्थता दोनों को खारिज कर दिया।

महिला मुक्ति और सशक्तिकरण

भारत के पास एक समृद्ध ऐतिहासिक विरासत है, और इसके पूरे अस्तित्व में महिलाएं लगातार आबादी का पचास प्रतिशत हिस्सा रही हैं। फिर भी, समाज में उनकी स्थिति हजारों वर्षों से एक जैसी नहीं रही है। उनकी स्थिति का आकलन अनेक माध्यमों से किया गया है और भारतीय संस्कृति के विभिन्न चरणों में उनकी भूमिका के संबंध में विरोधाभासी दृष्टिकोण व्यक्त किये गये हैं। अपने परिवार और समुदाय में एक महिला की स्थिति विभिन्न कारकों से प्रभावित होती है जैसे विदेशी आक्रमण, सामाजिक आंदोलन, भौगोलिक क्षेत्र, आर्थिक व्यवसाय, राजनीतिक स्थिरता और अस्थिरता और उसके परिवार की धार्मिक संबद्धता।

महिलाओं को आवंटित सामाजिक भूमिका उसके द्वारा हासिल की गई प्रगति के स्तर का एक विश्वसनीय संकेतक है। किसी सभ्यता के व्यक्तियों द्वारा महिलाओं के साथ किया जाने वाला व्यवहार उसकी नैतिक अखंडता का आकलन करने के लिए एक मानदंड के रूप में काम कर सकता है। महिलाओं की स्थिति समाजशास्त्रीय जांच और चर्चा का विषय है क्योंकि यह समाज की लगभग आधी आबादी की परिस्थितियों को प्रतिबिंबित करती है। मानव समाज के ऐतिहासिक विकास की जांच से पता चलता है कि दुनिया के किसी भी समाज में महिलाओं को पुरुषों के साथ पूर्ण समानता प्राप्त नहीं थी।

19वीं शताब्दी के दौरान, सामाजिक अन्याय, पूर्वाग्रह और शोषण व्यापक था, जिसका विभिन्न समूहों पर अलग-अलग प्रभाव पड़ा। विशेष रूप से, महिलाओं को कम उम्र में विवाह, विधवापन, सीमित शिक्षा और रोजगार के अवसरों और सामाजिक कष्टों जैसे मुद्दों के कारण बेहद हीन सामाजिक स्थिति का सामना करना पड़ा। समाज में हाशिए पर रहने वाली विधवाओं को पुनर्विवाह पर प्रतिबंध के कारण अनिश्चित परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। महात्मा ज्योतिबा फुले और सावित्रीबाई फुले ने इन चुनौतियों को पहचानते हुए, एक शिक्षा आंदोलन शुरू किया और बाल विवाह और महिलाओं की अधीनस्थ स्थिति जैसे मुद्दों के समाधान के लिए स्कूलों की स्थापना की। उनके साहित्यिक कार्य और सत्य शोधक समाज की स्थापना ने हाशिए पर रहने वाले समूहों, विशेषकर शूद्रों, अति-शूद्रों और महिलाओं की भलाई को आगे बढ़ाने के लिए उनकी प्रतिबद्धता को दर्शाया। ब्रिटिश शासन के दौरान सामाजिक-राजनीतिक सुधारकों के मेहनती प्रयासों के कारण, शिक्षा, रोजगार, सामाजिक अधिकारों और अन्य क्षेत्रों में लैंगिक असमानताओं को कम करने में पर्याप्त प्रगति हासिल हुई। बाल विवाह, सती प्रथा, देवदासी प्रथा, पर्दा प्रथा और विधवा पुनर्विवाह पर प्रतिबंध की प्रथाओं को उचित कानून द्वारा

या तो सीमित कर दिया गया या समाप्त कर दिया गया। ये कानून महात्मा ज्योतिबा फुले जैसे सामाजिक-राजनीतिक सुधारकों के लगातार प्रयासों के परिणामस्वरूप बनाए गए थे।

फुले के समय में, महिलाओं को सामाजिक स्थिति का अभाव था और वे अपने घरों के भीतर भी विनम्र थीं। वे अपने परिवारों और समुदायों के भीतर सभी अधिकारों से वंचित थे। इसी प्रकार, वे शिक्षा से भी वंचित थे। शिक्षक का आचरण अपवित्रता का घोर कृत्य और हिंदू धर्म के सिद्धांतों पर गंभीर हमला था। पुणे में अपना प्रारंभिक शैक्षणिक संस्थान स्थापित करने के बाद, सामाजिक परिवर्तन के प्रबल समर्थक फुले को जब शूद्र और अछूत महिलाओं को शिक्षित करने की बात आई तो उन्हें समुदाय के तीव्र विरोध का सामना करना पड़ा। पुणे के पारंपरिक और अशिक्षित ब्राह्मणों द्वारा ज्योतिबा को हिंदू धर्म का दुश्मन और कथित पवित्र शहर का अपमान माना जाता था। पारंपरिक मान्यताओं और सामाजिक पदानुक्रम के सख्त पालन की विशेषता वाली अवधि के दौरान, किसी भी शिक्षक ने सबसे निचले सामाजिक वर्गों की महिलाओं को शिक्षा प्रदान करने की पेशकश नहीं की। फुले की पत्नी, सावित्रीबाई द्वारा अध्यापन का कार्य अपनाने के कुछ ही समय बाद, पुणे में दम्पति के विरुद्ध बेलगाम उत्साह और क्रोध का विस्फोट हुआ।

मनुवादी और ब्राह्मणवादी गुटों से गंभीर दुर्व्यवहार का सामना करने के बावजूद, ज्योतिबा और सावित्रीबाई ने लैंगिक समानता की वकालत की और जाति व्यवस्था का विरोध किया। अपनी पत्नी, सावित्रीबाई के समर्थन से, ज्योतिबा पर्याप्त आलोचना और चुनौतियों से प्रभावित हुए बिना, महिलाओं की शिक्षा के प्रति अपने समर्पण में लगे रहे। 15 सितंबर, 1853 को बैठक के दौरान जानोदय ने महिलाओं की शिक्षा के बारे में अपनी अटल स्थिति व्यक्त की। उनका दावा है कि एक बच्चे को अपनी माँ के कारण जो उन्नति मिलती है वह पर्याप्त और लाभकारी होती है। जो लोग इस देश की संतुष्टि और कल्याण को प्राथमिकता देते हैं, उन्हें महिलाओं द्वारा सामना की जाने वाली कठिन परिस्थितियों पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए और उन्हें शिक्षा प्रदान करने के लिए हर संभव प्रयास करना चाहिए, अगर वे राष्ट्र की प्रगति चाहते हैं। इसी बात को ध्यान में रखकर मैंने सबसे पहले कन्या विद्यालय की स्थापना की। महिलाओं को शिक्षित करने के मेरे फैसले के प्रति मेरे जातिगत संबंधों की अस्वीकृति के कारण मेरे पिता ने हमें परिसर खाली करने के लिए मजबूर किया। कोई भी व्यक्ति स्कूल के लिए कमरा उपलब्ध कराने को तैयार नहीं था, और हमारे पास इसके निर्माण के लिए आवश्यक धन नहीं था। व्यक्तियों ने शैक्षणिक संस्थानों में अपने बच्चों के नामांकन के संबंध में चिंताएं व्यक्त कीं, हालांकि, राऊत मांग और रणबा महार लाहुजी राघ ने सफलतापूर्वक अपने जाति समुदाय के सदस्यों को ज्ञान प्राप्त करने के लाभों के बारे में आश्वस्त किया।

महात्मा ज्योतिबा फुले और सावित्रीबाई अपने-अपने युग में उल्लेखनीय व्यक्ति थे। उन्होंने अपनी पत्नी को औपचारिक स्कूली शिक्षा के लिए निर्देश देकर और सुसज्जित करके महिला शिक्षा की प्रगति को सुविधाजनक बनाया। सावित्रीबाई भारत की पहली महिला स्कूल शिक्षिका थीं। 1848 में, उन्होंने पुणे में विशेष रूप से महिला छात्रों के लिए शैक्षिक संस्थान की स्थापना की। उन्होंने हाशिए के क्षेत्रों, अर्थात् शूद्र और अति शूद्र जातियों से संबंधित महिला छात्रों और वयस्कों की शिक्षा की वकालत की। उन्होंने शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की। सावित्रीबाई ने पुणे महिला मूलनिवासी स्कूल

और महार, मांग शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए सोसायटी जैसी संस्थाओं की स्थापना की। महिला शिक्षा के प्रति उनका समर्पण 1847 में शुरू हुआ जब उन्होंने और सगुनाबाई ने महारवाड़ा में एक स्कूल की स्थापना की। 1 जनवरी, 1848 को पुणे के भिड़े के वाड़ा में विशेष रूप से महिलाओं के लिए पहला शैक्षणिक संस्थान स्थापित किया गया था। सावित्रीबाई को इसकी उद्घाटन प्रधानाध्यापिका के रूप में नियुक्त किया गया था। उन्हें ऐसे समय में एक शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था जब लड़कियों को शिक्षित करना पारंपरिक मूल्यों के लिए अपमानजनक और अपमानजनक माना जाता था।

ज्योतिबा ने उस्मान शेख के वाड़े में एक वयस्क शिक्षा संस्थान की स्थापना की। 1849 में, फुले ने विशेष रूप से महिलाओं, शूद्रों और अति-शूद्रों के लिए अतिरिक्त 18 शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना की। लड़कियों की शिक्षा को बढ़ावा देने के प्रति समर्पण के लिए सावित्रीबाई फुले को 1852 में स्कूल निरीक्षण समिति द्वारा आदर्श शिक्षक पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। ज्योतिबा सावित्रीबाई के प्रयासों से महत्वपूर्ण प्रगति हुई। सरकारी स्कूल विशेष रूप से उच्च जाति के विद्यार्थियों के लिए उपलब्ध थे। 29 मई, 1852 को एक व्यक्ति ने पूना ऑब्ज़र्वर में बताया कि ज्योतिबा के शैक्षणिक संस्थान में महिला छात्रों की संख्या सरकारी संस्थानों में पुरुष छात्रों की संख्या से दस गुना अधिक थी।

हाल ही में, 1863 में सावित्रीबाई-ज्योतिबा द्वारा 'शिशुहत्या की रोकथाम के लिए गृह' की स्थापना के बारे में सुलभ जानकारी मिली है। विशेष रूप से ब्राह्मण जाति से संबंधित विधवाओं के लिए इस संस्था के निर्माण के लिए सावित्रीबाई द्वारा किया गया सराहनीय प्रयास उल्लेखनीय है। ज्योतिबा फुले ने इस जानकारी का दस्तावेजीकरण करते हुए 4 दिसंबर 1884 को मुंबई सरकार के अवर सचिव को एक पत्र दायर किया।

ज्योतिबा लैंगिक समानता के सिद्धांत में विश्वास करते थे। उन्होंने महिलाओं की शिक्षा और स्वायत्तता के महत्व को रेखांकित किया। उन्होंने सार्वजनिक क्षेत्र में महिलाओं को शामिल करने की सुविधा प्रदान की। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि देश का विकास समानता और एकता की अपरिहार्यता पर निर्भर करता है। उन्होंने लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए कम उम्र में विवाह के खिलाफ वकालत की।

उन्होंने उन महिलाओं के लिए आश्रय की स्थापना की जिनके पतियों की मृत्यु हो गई थी और विधवाओं के पुनर्विवाह की प्रथा को सुविधाजनक बनाया। उस काल में विधवा पुनर्विवाह पर रोक थी, जबकि ब्राह्मणों और हिंदुओं में बाल विवाह प्रचलित था। विधवाओं की एक बड़ी संख्या युवा थी, और उनमें से सभी रूढ़िवादी आबादी द्वारा लगाई गई सामाजिक अपेक्षाओं का पालन नहीं करती थीं। कई विधवाओं ने गर्भपात का सहारा लिया या अपने नाजायज बच्चों को सड़कों पर छोड़ दिया। 1863 में, उन्होंने शिशुहत्या और आत्महत्या की घटनाओं को रोकने के लिए शिशुओं के लिए एक आवास का निर्माण किया। यह पहल उन विधवाओं द्वारा सामना किए जाने वाले खतरों के बारे में उनकी जागरूकता से प्रेरित थी, जिन्होंने अपने पतियों की मृत्यु के बाद चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में गर्भ धारण किए हुए बच्चों को जन्म दिया था। 1854 में, फुले ने विधवा पुनर्विवाह की प्रथा की जोरदार

वकालत की और यहां तक कि ऊंची जाति की विधवाओं के लिए विशेष रूप से एक आवास के निर्माण का काम भी शुरू कर दिया। उन्होंने व्यक्तियों को अपने बच्चों को उन शैक्षणिक संस्थानों में दाखिला लेने के लिए लगातार प्रोत्साहित किया, जिनकी स्थापना उन्होंने विशेष रूप से वंचित व्यक्तियों और महिलाओं के लिए की थी।

पिछड़ी जातियों की मुक्ति और कल्याण

ब्राह्मणों द्वारा जाति व्यवस्था की स्थापना ने न केवल भारतीय समाज पर प्रभुत्व स्थापित किया है, बल्कि शूद्रों और अछूतों सहित निचली जातियों की सामाजिक गतिशीलता और उन्नति में भी बाधा उत्पन्न की है। ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान, समाज सुधारकों और सरकार द्वारा शिक्षा प्रदान करने और हाशिए पर मौजूद सामाजिक-आर्थिक वर्गों को सशक्त बनाने के लिए सीमित प्रयास किए गए थे। ब्रिटिश प्रयासों को महात्मा ज्योतिबा फुले, कोल्हापुर के शाहू महाराजा, डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर और अन्य जैसे विभिन्न सामाजिक-राजनीतिक दार्शनिकों के नेतृत्व में सामाजिक सुधार आंदोलनों द्वारा आकार दिया गया था। शूद्रों और अनुसूचित जातियों के खिलाफ भेदभाव ग्रामीण क्षेत्रों में जारी है, खासकर निजी क्षेत्रों जैसे भोजन स्थलों, स्कूलों, मंदिरों और जल आपूर्ति में। यह शहरी क्षेत्रों और आम जनता के दायरे से लगभग गायब हो गया है। कुछ शूद्र सफलतापूर्वक शहरी भारतीय समाज में एकीकृत हो गए हैं, जहां जाति का प्रभाव और महत्व कम स्पष्ट और कम महत्वपूर्ण है। बहिष्करण में कमी का संकेत देने वाले सबूतों के बावजूद, ग्रामीण भारत में अनुसूचित जातियां अक्सर स्थानीय धार्मिक गतिविधियों में भाग लेने से हाशिए पर रहती हैं, जो जाति विभाजन की स्थायी दृश्यता को उजागर करती है।

ज्योतिबा फुले ने अस्पृश्यता और संपूर्ण जाति व्यवस्था के उन्मूलन की पुरजोर वकालत की, और सदियों से कई लोगों पर अत्याचार करने वाली अन्यायपूर्ण प्रथाओं के खिलाफ विद्रोह किया। उन्होंने ब्राह्मण व्यवस्था की दोहरी नैतिकता की आलोचना की और समान अवसरों की आवश्यकता पर जोर दिया, यह घोषणा करते हुए कि प्रत्येक व्यक्ति जन्म से ही समान अधिकारों के साथ स्वाभाविक रूप से स्वतंत्र है। मानवाधिकारों के कट्टर समर्थक फुले ने 19वीं सदी के महाराष्ट्र में हाशिये पर पड़ी जातियों के उत्थान के लिए 1873 में सत्यशोधक समाज की स्थापना की।

प्राचीन काल में, हिंदू धर्मग्रंथों ने भेदभावपूर्ण प्रथाओं को कायम रखते हुए शूद्रों और अति-शूद्रों को शिक्षा और समान सामाजिक प्रतिष्ठा से बाहर रखा। फुले द्वारा पुणे में स्थापित सत्य शोधक समाज एक महत्वपूर्ण गैर-ब्राह्मण संगठन के रूप में उभरा, जिसने सामाजिक रूप से वंचित समूहों और श्रमिकों को एकजुट किया। समाज का उद्देश्य उत्पीड़ितों को सशक्त बनाना, जागरूकता बढ़ाना और उस समय के चालाक पादरियों का विरोध करना था।

फुले ने कहा कि समाज का मुख्य लक्ष्य अस्पृश्यता और जाति व्यवस्था का सक्रिय विरोध करके निचले वर्गों को ब्राह्मण नियंत्रण से मुक्त कराना है। समाज ने पुरोहिती सेवाओं से इनकार कर दिया और पुरोहितों के बिना शादियों और समारोहों की वकालत की, जिससे ब्राह्मणों को कानूनी चुनौतियों का सामना करना पड़ा, जो इन क्रांतिकारी विचारों से परेशान थे।

ज्योतिबा फुले ने हिंदू जाति व्यवस्था और मनुष्यों द्वारा स्थापित वर्ण-व्यवस्था पर आधारित असमानताओं के खिलाफ विद्रोह किया। उन्होंने हिंदू समाज में सुधार लाने के अपने प्रयासों में बहुत बहादुरी का प्रदर्शन किया। उन्होंने लोगों के मन से हीनता की भावना को खत्म करने का प्रयास किया। उन्होंने शूद्रों के प्रति जागृति जगाई। उन्होंने उन्हें अध्ययन करने और शक्तिशाली पद प्राप्त करने की सलाह दी; वे गुलाम नहीं हैं, बल्कि व्यक्ति हैं। टी.एल. के अनुसार. जोशी के अनुसार, ज्योतिबा फुले भारत की पारंपरिक सामाजिक संरचना को चुनौती देने वाले शुरुआती अग्रदूत थे। यह देखते हुए कि लंबे समय से चले आ रहे सामाजिक मानदंडों ने हजारों वर्षों से भारतीय मानस पर एक मजबूत नियंत्रण स्थापित कर रखा था, उन्हें इस विद्रोह के लिए प्रेरणा कहां से मिली? जोतिबा एक सत्यशोधक थे, जिसका अर्थ है कि वह ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने मानव जीवन के नैतिक सत्य की खोज की थी। इस स्थायी सत्य को आधुनिक पश्चिमी सभ्यता द्वारा समर्थित, ब्रह्मांड के भीतर मानव जाति की सहज स्वतंत्रता में उनके दृढ़ विश्वास से उदाहरण दिया गया था। उन्होंने स्वतंत्रता, समतावाद और वैश्विक बंधुत्व के विचारों पर आधारित मानवतावादी विचारधारा की वकालत की। उन्होंने अपने लेखन "गुलामगिरी और ब्राह्मणाचे कसाब" में जाति व्यवस्था को चुनौती दी। उन्होंने सत्यशोधक समाज समूह की स्थापना की और व्यापक प्रगति की प्रक्रिया शुरू की।

ज्योतिबा फुले ने जोर देकर कहा कि ऊंची जातियां सामाजिक पदानुक्रम पर नियंत्रण रखती हैं और विशेषाधिकार प्राप्त लाभ प्राप्त करती हैं। किसी के सामाजिक वर्ग और लिंग के आधार पर मतभेद मौजूद थे। सामाजिक ढांचे के भीतर, उत्पीड़ित मानव अधिकारों के किसी भी अधिकार से वंचित थे, केवल प्रतिकूल परिस्थितियों, घटिया उपचार, असमानता और शोषण का अनुभव कर रहे थे। धर्म, पुराण और वेद इस विशेष सामाजिक संरचना का समर्थन करते हैं। इस प्रकार, फुले ने ऐसे सामाजिक ढांचे के प्रति कड़ा प्रतिरोध प्रदर्शित किया। उन्होंने निष्पक्षता, करुणा और समतावाद के सिद्धांतों पर आधारित एक नवीन सामाजिक मॉडल विकसित करने का प्रयास किया। वह समानता, न्याय, स्वतंत्रता और भाईचारे के आदर्शों के आधार पर भारत में एक नवीन सामाजिक ढांचे के निर्माण की आकांक्षा रखते थे। वह भारतीय इतिहास के अग्रणी व्यक्ति थे जिन्होंने लड़कियों के लिए स्कूलों और शोक संतप्त माताओं और उनके बच्चों के लिए अनाथालयों की स्थापना के माध्यम से महिला शिक्षा की वकालत की। वह अपने साहसिक प्रयासों के लिए ब्रिटिश सरकार से मान्यता प्राप्त करने वाले पहले भारतीय थे।

उनके सराहनीय कार्यों के लिए ब्राह्मण समाज ने उनकी कड़ी निंदा की और उन पर शारीरिक हमले किये। फिर भी, उन्होंने अपना आंदोलन जारी रखा। उन्होंने अपना जीवन अछूतों, किसानों और महिलाओं की मुक्ति के लिए समर्पित कर दिया।

ज्योतिबा फुले ने पुणे में नेटिव फीमेल स्कूल की स्थापना की और महार और मांग की शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए सोसायटी भी शुरू की। इन दोनों संस्थानों की स्थापना के माध्यम से पुणे क्षेत्र में स्कूलों का एक नेटवर्क स्थापित किया गया था। फुले ने महिला शिक्षा और हाशिए पर रहने वाले समुदायों की मुक्ति की वकालत करने के अपने प्रयासों को आगे बढ़ाने के लिए जानोदय और बॉम्बे गार्जियन नामक दो पत्रिकाओं का उत्पादन शुरू किया।

भारत में महात्मा ज्योतिबा फुले ने महिलाओं और शूद्रों को धार्मिक आधिपत्य से मुक्ति दिलाई और पिछड़ा वर्ग आंदोलन की नींव रखी। महात्मा फुले को भारत में सामाजिक सुधार आंदोलन में अग्रणी व्यक्ति के रूप में पहचाना जाता है। भारत में उन्हें सामाजिक उथल-पुथल के जनक के रूप में स्वीकार किया जाता है।

ज्योतिबा ने देश के प्रति मानवता की भक्ति का उदाहरण प्रस्तुत किया। उनमें सभी सचमुच असाधारण व्यक्तियों की तरह एक सार्वभौमिक व्यक्ति के गुण मौजूद थे। उन्होंने मानव अधिकारों, समानता, शांति और समृद्धि की वकालत की और उन्हें सत्ता की प्राप्ति पर प्राथमिकता दी। उन्होंने एक ऐसे धर्म की तलाश की जो सामाजिक समतावाद को मान्यता दे और बढ़ावा दे। उनके दृष्टिकोण के अनुसार, धर्म एक ऐसी घटना है जिसमें केवल मौखिक अभिव्यक्ति के बजाय व्यक्तिगत अनुभव की आवश्यकता होती है। ज्योतिबा फुले को धार्मिक मान्यताओं की तुलना में नैतिकता, सामाजिक सरोकारों और तार्किक तर्क के सिद्धांतों का अधिक पालन था। उस दौरान पुनर्जन्म में विश्वास पर उनका जोरदार और तर्कसंगत हमला काफी उल्लेखनीय था। उनका उद्देश्य हिंदुओं की गलत धारणाओं को दूर करना था कि कठिन समय के दौरान भगवान उनकी मदद करने के लिए हस्तक्षेप करेंगे और उनका भाग्य पूर्व निर्धारित था। उन्होंने उनमें स्वायत्तता की भावना पैदा की और उनसे अपने मौलिक अधिकारों की हिमायत करने और उनकी रक्षा करने का आग्रह किया। इसलिए, महात्मा फुले की शिक्षाओं और मूल्यों से उत्पन्न मानवाधिकार की धारणा वर्तमान समय के लिए प्रासंगिक है और इसे साकार किया गया है।

सन्दर्भ ग्रंथ:

1. चंचरीक, कन्हैयालाल, (2006) समाज सुधार आंदोलन और ज्योतिबा फुले श्री पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स
2. गौर, अलकर्टाइन (1980) भारत में महिलाएं लंदन: द ब्रिटिश लाइब्रेरी सीरीज़
3. कीर, धनंजय (1997) महात्मा ज्योतिराव फुले: भारतीय सामाजिक क्रांति के जनक लोकप्रिय प्रकाशन
4. कोठारी, स्मितु. (1989) "भारत में मानवाधिकार आंदोलन: एक महत्वपूर्ण अवलोकन।" मानव अधिकारों पर पुनर्विचार: सिद्धांत और कार्रवाई के लिए चुनौतियाँ
5. मुखर्जी, रुद्रांगशु. (1986) "जाति, संघर्ष और विचारधारा: महात्मा ज्योतिराव फुले और उन्नीसवीं सदी के पश्चिमी भारत में निम्न जाति का विरोध।" रोज़ालिंड ओ'हानलोन द्वारा, सामाजिक इतिहास, 11 (6)।
6. ओमवेट, गेल और दलित विज्ञान (2006) "जाति-विरोधी आंदोलन और एक भारतीय पहचान का निर्माण।" टाइम्स श्रृंखला 8 के लिए ट्रेक्ट
7. विजापुर, अब्दुलरहीम पी., और सुरेश कुमार, (1999) मानवाधिकार पर परिप्रेक्ष्य. माणक प्रकाशन, 1999.

8. बाला, रजनी (2012) "नवज्योति, 'महात्मा ज्योति राव फुले: ए फॉरगॉटन लिबरेटर'।" अंतर्राष्ट्रीय जर्नल बुनियादी और उन्नत अनुसंधान 1(2)
9. रेनू पांडे. (2015) "औपनिवेशिक भारत में महिला शिक्षा के योद्धा: सावित्रीबाई फुले का एक केस स्टडी", इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ इनोवेटिव सोशल साइंस एंड ह्यूमैनिटीज़ रिसर्च, 2(1)
10. सिरसवाल, देशराज. (2013) "ज्योतिबा फुले: एक आधुनिक भारतीय दार्शनिक।" दर्शन: दर्शन और योग के लिए अंतर्राष्ट्रीय रेफरीड त्रैमासिक अनुसंधान जर्नल 1 (3)।
11. नारके, एच. (2008)। "सावित्री फुले पर: ज्ञानज्योति सावित्रीबाई फुले।" सावित्रीबाई फुले प्रथम स्मृति व्याख्यान। एनसीईआरटी मेमोरियल व्याख्यान श्रृंखला 12. दलित मानवाधिकार पर राष्ट्रीय अभियान, <http://www.ncdhr.org.in/ndmj/>
12. सूबे सिंह, महात्मा गोविंदराव. (2015)। जोतिबा फुले और सत्य शोधक समाज: उन्नीसवीं सदी के दूसरे भाग में महाराष्ट्र में एक सामाजिक सुधार आंदोलन, इंडियन जर्नल ऑफ़ एप्लाइड रिसर्च, 5(6)